स्मृति-शेष

पिछड़े समाजों के प्रतिबद्ध अध्येता : हमज़ा अलवी

● अभिनव

2003 के अंतिम महीने बौद्धिक जगत के लिए अच्छे नहीं रहे। पहले 26 सितम्बर को एडवर्ड सईद का निधन हुआ और लगभग दो महीने बाद ही 1 दिसम्बर के दिन कराची में प्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री, सामाजिक वैज्ञानिक और राजनीतिक कार्यकर्ता हमज़ा अलवी का देहावसान हो गया। ताज्जुब की बात नहीं है कि उस हमज़ा अलवी की मौत की खबर को भारत के किसी बड़े राष्ट्रीय समाचार-पत्र में स्थान नहीं मिला जिसे उपनिवेशों और उत्तर-औपनिवेशिक समाजों-विशेषकर भारत और पाकिस्तान की उत्पादन-प्रणाली विषयक अपने शोधों से ही पश्चिमी अकादमिक जगत में प्रसिद्धि मिली। हमज़ा अलवी उन फैशनपरस्त बुद्धिजीवियों में नहीं थे जो तमाम नववामपंथी और भाँति-भाँति के "उत्तरविचारवादी" विमर्शों में उलझे रहते हैं। अलवी जीवन-पर्यन्त बेहद ज़मीनी समस्याओं, और गम्भीर व्यावहारिक प्रश्नों से जूझते रहे। शायद यही कारण था कि उनकी मौत की खबर की उतनी 'मार्केट-वैल्यू' नहीं थी।

प्रोफेसर हमज़ा अलवी के निधन के साथ ही हमारे बीच से एक ऐसी शख़्सियत चली गई जो एक ऐसे बुद्धिजीवी की मिसाल थी जो क़िताबी कीड़ा न बनकर ज़िन्दा सवालों से जूझा, और जो सिर्फ बौद्धिक प्रतिबद्धता का ही नहीं बल्कि राजनीतिक-सामाजिक सक्रियता का भी हामी था।

हमज़ा अलवी किसानी समाजों, औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक सामाजिक संरचनाओं और उत्पादन-प्रणाली पर हुई बहस में योगदान, औपनिवेशिक उत्पादन-प्रणाली के सिद्धान्त, और राज्य और संस्कृति, खिलाफ़त आन्दोलन, जैसे विषयों पर अपनी रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। वह उन बुद्धिजीवियों में से थे जो व्यावहारिक प्रश्नों पर सोचते हैं। उन्होंने कई विषयों पर काफी खुलकर, फरानी प्रस्थापनाओं से अलग हटकर सोचा, और कई विवादास्पद बातें भी कहीं, लेकिन किसी भी कोण से उन्हें आजकल के मुक्त चिंतकों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। वजह उनका ज़मीन से और जनता से जुड़ा होना था। अलवी उस पीढ़ी के बुद्धिजीवी थे जो राष्ट्रीय आन्दोलन और क्रान्तिकारी संघर्षों की ऊष्मा में पली-बढ़ी थी। उनकी दिमागी बनावट के निर्माण में राष्ट्रीय आन्दोलन की गर्मी की बहुत बड़ी भूमिका थी। इसलिए वह दुनिया के कुलीनतम संस्थानों का हिस्सा बने रहते हुए भी दिमाग़ी तौर पर कुलीन नहीं बने। व्यावहारिक ज्ञान को उन्होंने सबसे ज्यादा अहमियत दी। मिसाल के तौर पर जब उनकी दिलचस्पी किसानों और खेती के बारे में थी तो वह तंजानिया के किसानों के बीच रहे, खेती सीखी, पंजाब के किसानों के बीच में पंद्रह महीने बिताए। उनकी रचनाओं का गंभीर और जटिल अध्ययन भी क़िताबी होने की बजाय ज़मीन से जुड़ा होता है। यह मानसिक निर्मिति कैसे तैयार हुई, यह जानने के लिए उनकी जीवन-यात्रा की एक झलकी लेना अच्छा होगा।

हमज़ा अलवी का जन्म 10 अप्रैल, 1921 को कराची में हुआ था। उनके शुरुआती चरित्र-निर्माण में उनके दादा जी की काफी महत्वपूर्ण भूमिका थी, जिन्हें 'सिंध का सर सैयद अहमद खाँ' भी कहा जाता था। वह एक व्यवसायी और समर्पित शिक्षाविद थे। वह ख़िलाफ़त आन्दोलन से जुड़े रहे थे। शहरी गरीबों की शिक्षा से वह काफी सरोकार रखते थे और चाहते थे कि उनका पौत्र उनके जीवन को नज़दीकी से जाने। इसके लिए उन्होंने हमज़ा अलवी को म्युनिस्पैलिटी प्राइमरी स्कूल में दाखिला दिलाया जहाँ आम घरों के बच्चे पढ़ते थे। उसके बाद कराची अकादमी हाई स्कूल में उन्हें बी स्ट्रीम में दाखिला दिलाया गया जिसमें गरीब बच्चे पढ़ते थे। इसके प्रभाव के बारे में अलवी ने अपनी जीवनी में लिखा है : 'मेरे अन्दर एक सामाजिक विवेक पैदा हुआ और मैं बिना समाजवाद का कभी नाम सुने ही समाजवादी बन गया।'

इस दिलचस्प स्कूली शिक्षा के बाद उन्होंने अपनी आगे की शिक्षा कराची के डी. जे. कॉलेज, बी.ए. पूना के वाडिया कॉलेज, एम.ए. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पूरा किया। फिर पूना के गोखले शोध संस्थान से उन्होंने प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा. डी. आर. गाडगिल के मार्गदर्शन में शोध किया। उन्हीं के सुझाव और प्रोत्साहन पर 1945 में उन्होंने एक शोध अधिकारी के रूप में बम्बई में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया के केन्द्रीय कार्यालय में नौकरी शुरू कर दी। यह उनका पहला पेशा था। जब विभाजन की घोषणा हुई तो रिजर्व बैंक के तत्कालीन गवर्नर देशमुख ने उन्हें स्टेट बैंक ऑफ पाकिस्तान में जाने का सुझाव दिया क्योंकि वहाँ प्रशिक्षित लोगों की कमी थी जिनके बिना स्टेट बैंक ऑफ़ पाकिस्तान नहीं चल सकता था। प्रशिक्षण के लिए अलवी को विनिमय-नियंत्रण विभाग में भेजा गया। और फिर विभाजन के बाद वह कराची वापस आ गये। स्टेट बैंक के विनिमय-नियंत्रण विभाग में अपने प्रभावशाली काम की बदौलत वह बैंक में जल्दी ही काफी ऊँचे पद पर पहुँच गये। उन्हें 1952 में केंद्रीय बोर्ड के पाँच सचिवों में से एक का पद मिला जो गवर्नर और डिप्टी गवर्नर के बाद बैंक का तीसरा सर्वोच्च पद होता था। इसके पहले पूर्वी पाकिस्तान स्टेट बैंक का पूरा जिम्मा उनको सौंप दिया गया था जहाँ स्थितियाँ

काफी कठिन थीं। वहाँ जाने के कुछ समय बाद ही वहाँ के बड़े उद्योगपतियों से उनका तनाव शुरू हो गया। इसके बाद ही उनकी पदोन्नति करके उन्हें कराची वापस बुला लिया गया।

इस बीच कामों के बोझ से उनका स्वास्थ्य काफी गिर जाने के कारण उन्हें छुट्टी दी गई। वह अपनी पत्नी के साथ तंजानिया चले गये। अकादमिक जगत में जाने की उनकी चाहत अभी भी ज़िन्दा थी और किसानों और खेती में उनकी विशेष दिलचस्पी थी। वहाँ जाने के कुछ समय बाद ही उन्होंने स्टेट बैंक से इस्तीफा दे दिया और तंजानिया में ही खेती करने का इरादा बना लिया। जैसा कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है, इस फैसले के पीछे एक रोमांटिक पलायनवाद था। अलवी जब एक फार्म पर खेती सीखने के लिए नौकरी कर रहे थे तभी वह बीमार पड़ गये जिसके बाद वहाँ के अनाड़ी डॉक्टरों ने उनका एक गैरज़रूरी ऑपरेशन कर दिया। ऑपरेशन के घाव काफी समय तक ठीक न होने के बाद वह लंदन गये और कई हफ्तों तक यूनिवर्सिटी कॉलेज अस्पताल में उनका इलाज चला। इस दौरान वह 'रोमांटिक सपनों की दुनिया से हकीकत की दुनिया में वापस आ गए।' उन्होंने लंदन में रुक जाने का निर्णय लिया। लेकिन पाकिस्तान में जो कुछ हो रहा था उसको लेकर वह काफी विचलित थे। इसलिए अकादमिक जगत में जाने के अपने फैसले को कुछ समय के लिए टालते हुए वह राजनीतिक-सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय हो गये।

यह उनके जीवन का दूसरा पड़ाव था। दस साल तक वह लंदन में सेमिनारों, भाषणों और लेखन के जरिए राजनीतिक रूप से सक्रिय रहे। शुरुआत में उन्होंने 'लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स' से 'पाकिस्तान में बैंकिंग' विषय पर शोध शुरू किया। लेकिन इस विषय से वह बुरी तरह से ऊबे हुए थे। वह लिखते हैं : 'खोखले अकादमिकवाद से मेरा मोहभंग हो चुका था।' पाकिस्तान में हो रही घटनाएँ उन्हें परेशान कर रही थीं। वह गहराई से समस्याओं को समझना और उनका समाधान प्रस्तुत करना चाहते थे। इन चीजों पर कोई काम भी नहीं कर रहा था। ऐसी सूरत में उन्होंने 1957 में एक त्रैमासिक पत्रिका *'पाकिस्तान टुडे'* निकालनी शुरू की। यह 1962 तक निकली। इसमें 'दि बर्डेन ऑफ यू.एस. एड' नामक बहुचर्चित लेख समेत अनेक महत्वपूर्ण लेख आए। यह पत्रिका गुप्त रूप से पूरे पाकिस्तान में प्रसारित हुई।

हमज़ा अलवी और उनकी पत्नी ने अपने मित्र एक बांग्लादेशी दम्पति के साथ 1955 से 1966 तक प्रवासी पाकिस्तानी छात्रों और मजदूरों के बीच काफी सफलतापूर्वक काम किया। उन्होंने अलग-अलग स्तरों पर कई संगठनों का भी निर्माण किया, जैसे, *'पाकिस्तान यूथ लीग', 'पाकिस्तानी सोशलिस्ट सोसायटी', 'कमिटी फॉर दि रेस्टोरेशन ऑफ डेमोक्रेसी इन पाकिस्तान', 'कैम्पेन अगेंस्ट रेशियल डिस्क्रिमिनेशन (कार्ड)'*, आदि। इन संगठनों की बैठकों में **एरिक हॉब्सबॉम, स्टुअर्ट हॉल, टोनी बेन** जैसे लोग आया करते थे।

सक्रियता के एक दशक के बाद हमजा अलवी ने यह महसूस किया कि इंग्लैण्ड में सामाजिक सक्रियताओं की कुछ सीमाएँ हैं। सक्रियता के दौर में हर कोने से मुसीबत में पड़े एशियाई मूल के लोगों के फोन आते रहते थे और कहीं भी उन्हें आराम नहीं मिलता था। इसी दौरान वह तमाम जरूरी सैद्धान्तिक सवालों पर सोच रहे थे और उन्हें लगने लगा कि यदि सक्रियता जारी रहेगी तो इन सवालों को हल करने का मौका उन्हें जीवन पर्यन्त नहीं मिलेगा। ऐसे हालात में मजबूरी में उन्होंने 1966 में सामाजिक सक्रियता छोड़कर अकादमिक प्रतिबद्धताओं को पूरा करने में वक्त लगाने का फैसला कर लिया। ससेक्स विश्वविद्यालय के 'इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेन्ट स्टडीज' में चले गये। इस विभाग में काम करते हुए ही उन्होंने पंद्रह महीने तक पंजाब के एक गाँव में शोध किया। इसके बाद उन्हें कनाडा के मिशिगन स्टेट विश्वविद्यालय की ओर से बुलावा आया लेकिन उनकी राजनीतिक गतिविधियों और सैद्धान्तिक आस्थाओं के चलते उन्हें कनाडा में आकर पढ़ाने की अनुमति नहीं मिली। हालाँकि बाद में यह प्रतिबंध हट गया, लेकिन अब कनाडा जाने में उनकी कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी थी। उन्होंने इस घटना की बाबत कहा था : 'कि इससे बहुप्रचारित 'पश्चिमी जनतंत्र' की पोल खुल गयी, मैकार्थी आज भी राज कर रहा है।'

वह कनाडा में प्रोफेसर बनने की बजाय इंग्लैण्ड के लीड्स विश्वविद्यालय में लेक्चरर बने। इसके पहले उन्हें एम्सटरडम विश्वविद्यालय में प्रोफेसर पद का आमंत्रण मिला। लेकिन चूँकि इंग्लैण्ड में उनके बहुतेरे मित्र थे, इसलिए उन्होंने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया और लीड्स में एक छोटे पद पर रहना स्वीकार किया। लीड्स में पाँच साल गुजारने के बाद 1977 से 1988 तक वह मैनचेस्टर विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग में रीडर रहे। लीड्स छोड़ने की मुख्य वजह यह थी कि उनके सबसे अच्छे मित्र राल्फ मिलिबैण्ड वहाँ से चले गये थे और विभाग का माहौल काफी बदल गया था। 1989 में वह कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में रॉबर्ट ब्रेनर के साथ रहे। 1994 तक वह ससेक्स विश्वविद्यालय में ऑनररी एसोसिएट फेलो थे। 1997 से वह कराची में रह रहे थे। और 1 दिसम्बर 2003 के दिन बयासी वर्ष से कुछ अधिक आयु में उनका निधन हो गया।

●

हमजा अलवी ने एक बेहद सक्रिय बौद्धिक जीवन जिया। वह उस किस्म के बुद्धिजीवी नहीं थे जिनका शोध वातानुकूलित कमरों से शुरू होता है और उन्हीं में खत्म भी हो जाता है। शायद यही वजह रही कि वह न तो कभी नववाम या किसी "उत्तरविचारवादी" विमर्श में फँसे, और न ही कभी यांत्रिक और रूढ़ किस्म के मार्क्सवादी बने।

अलवी ने तीसरी दुनिया के देशों, विशेषकर दक्षिण एशिया के देशों के औपनिवेशिक अतीत, उपनिवेशोत्तर काल के विकास के चरित्र, किसानी समाजों की उत्पादन-प्रणाली की विशिष्टताओं का और भारत-पाकिस्तान के सांस्कृतिक-राजनीतिक इतिहास के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं का गहन अध्ययन किया। उन्होंने मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन और माओ के अध्ययन से विश्लेषण के उपकरणों को लिया, बजाय उनकी प्रस्थापनाओं

और निष्कर्षों को ज्यों का त्यों उठा लेने के।

समाज विकास की मूल आन्तरिक गति पर बल देने के बावजूद हमज़ा अलवी की यह मान्यता थी कि पश्चिम में सामन्तवाद के नाश और औद्योगिक पूँजीवाद के विकास उपनिवेशों की लूट और शोषण की अहम भूमिका थी। इसलिए, जिस प्रकार उपनिवेशों और उपनिवेशोत्तर समाजों की विकास-प्रक्रिया की चर्चा उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद की भूमिका की चर्चा के बिना नहीं हो सकती, उसीप्रकार यूरोपीय समाजों में भी सामन्तवाद से पूँजीवाद में संक्रमण की परिघटना का अध्ययन औपनिवेशिक समाजों और वैश्विक परिप्रेक्ष्य से पृथक एक 'बन्द मॉडल' के रूप में नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से उन्होंने उन यूरोपीय मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों की आलोचना की जिन्होंने साठ के दशक में इस प्रश्न पर चली हुई बहस में भाग लेते हुए उपनिवेशों से यूरोपीय समाजों के सम्बन्ध तथा यूरोपीय समाजों में हुए परिवर्तनों पर उनके प्रभावों का उल्लेख तक नहीं किया था।

उपनिवेशवाद के दौर में, औपनिवेशिक समाजों (विशेषकर भारत के सन्दर्भ में) पूँजीवाद के तत्वों के प्रवेश और प्रभाव का विशेष अध्ययन करते हुए हमज़ा अलवी ने 'औपनिवेशिक पूँजीवाद' और औपनिवेशिक पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों की अपनी थीसिस विकसित की। पहले उनका मानना था कि इन पिछड़े समाजों में पूँजी के प्रवेश ने सामन्ती उत्पादन-सम्बन्धों को बदलकर एक नये और विशिष्ट प्रकार का पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्ध विकसित किया। बाद में अपनी स्थापनाओं में सुधार करते हुए उन्होंने यह विचार प्रस्तुत किया कि उपनिवेशों में पूँजीवादी विकास की गति तो प्रारम्भ हो चुकी थी, लेकिन, खास तौर पर, भूमि-सम्बन्धों का स्वरूप सामन्ती ही बना रहा था। औपनिवेशिक काल की समाप्ति के बाद, खासतौर पर भारत में, यहाँ के सापेक्षतः शक्तिशाली औद्योगिक पूँजीपति वर्ग ने, एक क्रमिक प्रक्रिया में, सामन्ती भूमि-सम्बन्धों को बदलकर उनका पूँजीवादीकरण कर दिया। पाकिस्तान में चूँकि औद्योगिक पूँजीपति वर्ग की शक्ति कम और आधार संकुचित था, इसलिए वहाँ पुराने भूस्वामी अभिजात सत्ता के भागीदार बने रहे और पूँजीवादी विकास की यह प्रक्रिया गति नहीं पकड़ सकी। हमज़ा अलवी तीसरी दुनिया के पिछड़े देशों में विकसित पूँजीवाद पर साम्राज्यवादी दबाव एवं प्रभाव को स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि इन देशों के पूँजीपति वर्ग का साम्राज्यवाद से अन्तरविरोध भी है, लेकिन यह उसके दबाव में ही रहने को बाध्य है तथा साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद कर पाने की क्रान्तिकारी सम्भावना से रिक्त है। हमज़ा अलवी 'डिपेन्डेंसी थियरी' को मानने वाले उन मार्क्सवादियों की आलोचना करते हैं जो तीसरी दुनिया के अल्पविकसित पूँजीवाद को पूरी तरह से साम्राज्यवाद पर निर्भर मानते हैं और इसप्रकार समाज-विकास की आन्तरिक गति की प्रधानता की अनदेखी करते हैं तथा साम्राज्यवादी शक्तियों और तीसरी दुनिया के देशों के पूँजीपति वर्ग के बीच के अन्तरविरोधों की या तो अनदेखी करते हैं, या फिर उसे साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय मुक्ति के किसी किस्म के एजेण्डा का भागीदार मान बैठते हैं।

भारतीय समाज और उत्पादन-प्रणाली पर सत्तर के दशक में चली प्रसिद्ध बहस में उन्होंने अस्सी के दशक में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप किया। इसमें हिस्सा लेने वाले अन्य बुद्धिजीवियों में उत्सा पटनायक, आंद्रे गुंदर फ्रैंक, अशोक रुद्र, डेनियल व एलिस थॉर्नर, गेल ओमवेत, प्रधान हरिशंकर प्रसाद, जयरस बानाजी जैसे लोग थे। हमज़ा अलवी ने औपनिवेशिक पूँजीवादी सामाजिक संरचना के अपने पुराने सिद्धान्त को ही विस्तार देते हुए कहा कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भारत जैसे देशों की सामाजिक संरचना सामंतवादी या अर्द्धसामंती-अर्द्धऔपनिवेशिक नहीं है, और न ही यह यूरोपीय क्लासिकल पूँजीवाद जैसी है। यह एक विशिष्ट प्रकार की पूँजीवादी संरचना है जो विविध रूपों में उत्तरऔपनिवेशिक समाजों में पायी जाती है। अलवी के मतानुसार, औपनिवेशिक अतीत के कारण इन देशों का पूँजीवादी विकास धीमा और अल्पविकसित है। उन्होंने उन अर्थशास्त्रियों की आलोचना की जो भारतीय सच्चाइयों को यूरोपीय फ्रेम में किसी भी तरह से फ़िट करने की कोशिश कर रहे थे। उनका कहना था कि अगर भारतीय पूँजीवाद यूरोपीय पूँजीवाद जैसा नहीं है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि भारत सामंती या अर्द्धसामंती -अर्द्धऔपनिवेशिक है। यह मूलतः और मुख्यतः पूँजीवादी देश है, जिसकी अपनी विशिष्टताएँ हैं। हमजा अलवी की थीसिस की यह तार्किक निष्पत्ति है कि भारत आज किसी तरह की राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति की मंजिल के बजाय, एक विशेष किस्म की समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में है, जिसका निशाना देशी पूँजीवाद के साथ साम्राज्यवाद भी है और जिसके एजेण्डे पर रहे-सहे प्राक्-पूँजीवादी अवशेषों के खात्मे का कार्यभार भी मौजूद है।

अलवी ने एक और थीसिस दी जिसे 'अलवी-वुल्फ़ थीसिस' भी कहा जाता है (क्योंकि चार साल बाद एरिक वुल्फ़ ने इसका अपने तथ्यों से समर्थन किया)। इस थीसिस के मुताबिक, भारत जैसे देशों में मँझोले किसान मज़दूरों के साथ खड़े होंगे, क्योंकि कृषि में पूँजीवादी विकास के सबसे ज्यादा शिकार यही हो रहे हैं। उत्पादन-प्रणाली या सामाजिक संरचनाओं का अध्ययन करते हुए हमज़ा अलवी ने मार्क्स और लेनिन की कुछ प्रस्थापनाओं से कुछ ऐसी असहमतियाँ प्रकट कीं या उनकी कुछ ऐसी व्याख्याएँ दीं जो आज भी काफी विवादास्पद मानी जाती हैं। लेकिन इसके बावजूद तीसरी दुनिया के देशों के सामाजिकार्थिक अध्ययन-विशेषकर भूमि सम्बन्धों के अध्ययन में उनके योगदान की महत्ता निर्विवाद मानी जाती है। मुख्य बात यह है कि हमज़ा अलवी की विश्लेषण-पद्धति वैज्ञानिक है। वे फार्मूलों से प्रस्थान नहीं करते थे बल्कि ठोस वास्तविकताओं के अध्ययन से निष्कर्ष निकालने पर जोर देते थे।

उन्होंने तीसरी दुनिया के उन कम्युनिस्टों की भी आलोचना की जो अपने देश के विश्लेषण के लिये भी रूस या चीन की पार्टियों की तरफ देखते थे और रूसी और चीनी क्रान्ति के मॉडलों का अंधानुकरण करते थे। उन्होंने तीसरी दुनिया के देशों की विशिष्टताओं की ओर ध्यान खींचा और नये सिरे से इन समाजों की वर्ग-संरचना और उत्पादन-प्रणाली के विश्लेषण की जरूरत पर बल दिया।

इन गंभीर आर्थिक-सामाजिक प्रश्नों के अतिरिक्त उन्होंने पाकिस्तान में धार्मिक

(शेष पृष्ठ 26 पर)

बूते लोकप्रिय सरकार का तख्तापलट कर दिया और सत्तासीन होने के बाद कम्युनिस्टों, शियाओं, कुर्दों और अपने तमाम विरोधियों को क्रूर दमन का निशाना बनाया। इराक की कम्युनिस्ट पार्टी अरब देशों की सबसे शक्तिशाली कम्युनिस्ट पार्टियों में से एक थी। ख्रुश्चेव के नकली समाजवाद के प्रभाव में इसका नेतृत्व कतारों की जुझारू चेतना को कमजोर बनाने का काम कर ही रहा था कि सद्दाम का कहर बरपा हो गया। कुर्दों के दमन का इतिहास जाना-पहचाना है। शियाओं के भी एक हिस्से को दमन का सामना करना पड़ा।

खाड़ी युद्ध की परिस्थितियों को याद करें। वहाँ काफी जटिलताएँ थीं। सद्दाम हुसैन को खाड़ी युद्ध के एक विशेष दौर में अमेरिकी साम्राज्यवाद ने इस्तेमाल किया और वे इस्तेमाल हुए भी–अपनी आधिपत्यवादी महत्वाकांक्षाओं के चलते। सद्दाम हुसैन की स्थिति आम तौर पर तीसरी दुनिया के उन सभी देशों के बुर्जुआ शासक वर्ग पर लागू होती है जो उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद अपने-अपने देशों में सत्तारूढ़ हुए। अरब देशों के सत्ताधारियों के दोमुँहेपन एवं ऐतिहासिक विश्वासघात और उनकी सीमाओं को हाल में हुआ लीबिया के शासक मुहम्मद कजाफी का घुटनाटेकू रवैया भी उजागर करता है।

पूरे अरब में अब जिस नई क्रान्तिकारी लहर के बीज पक रहे हैं वह राष्ट्रवाद के झण्डे तले और बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में फलीभूत नहीं हो सकती। फलस्तीन और इराक की घटनाएँ यही दिखलाती हैं। अब यह लड़ाई नए सिरे से साम्राज्यवाद-विरोधी पूँजीवाद-विरोधी क्रान्ति के झण्डे के नीचे होगी। इस लड़ाई में व्यापक मेहनतकश जनता के साथ बुर्जुआ वर्ग का कोई हिस्सा सहयोगी बनने की क्षमता ऐतिहासिक तौर पर खो चुका है। सच पूछें तो अरब देशों के जनसंघर्षों की अभी यही समस्या है। वहां जनता के हरावल दस्ते की कोई नई पीढ़ी यदि है भी तो भ्रूणावस्था में है। बहरहाल, जनता संघर्षों के दौरान सीखती है और संघर्षों का दहनपात्र ही क्रान्तिकारी हरावलों को भी तपाकर मजबूत बनाता है। यही प्रक्रिया आज अरब देशों में चल रही है।

(पृष्ठ 2 का शेष)

पाठक मंच

इतिहास का सच

तुम्हारे हाथ इतिहास बनाते हैं या आदमी
यह बात उसकी समझ के बाहर है
जो सिर्फ अपने लिए जीवित होता है
समाज और मनुष्य की अवधारणा
जिसके लिए बेमानी होती है
यह सच है कि उसने जब भी उकेरने की
कोशिश की है
अपनी कविता में इतिहास को
हर बार यही पाया है उसने कि
इतिहास उसक विरुद्ध होता जा रहा है
फनः वह इतिहास को दुहराने की
गलती भी करना चाहता है
लेकिन इतिहास तो इतिहास
पूरा विश्व उसके खिलाफ जाने लगता है
लिहाजा वह इतिहास के बाहर
चला जाता है अन्ततः
उसके पूरे वजूद के साथ

–रामनिहाल गुंजन
नया शीतल टोला, आरा (बिहार)

आह्वान का जनवरी-मार्च, 2003 अंक पढ़ा। जिसमें बेचैन करते सवाल (एकदलीय छात्र के, आत्महत्या) को पढ़कर अत्यन्त दुख हुआ, और भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था एवं विश्व में तथाकथित रूप से सर्वोच्च कहे जाने जाने वाले लोकतांत्रिक देश का नग्न रूप प्रकट हुआ है। इसमें मुख्यतः एक दलित छात्र की हत्या नहीं एक ग़रीब छात्रा की हत्या हुई है क्योंकि अगर यही छात्र धनाढ्य परिवार का होता तो न तो उसे इतना अपमानित होना पड़ता और न ही वह आत्महत्या करता। ऐसे प्रकरण देश की आर्थिक वैषम्यता को चित्रित करते हैं। वर्तमान देश में व्याप्त कुलीनवादी संस्कृति, जातिवाद, सामाजिक आर्थिक विषमता एवं अमानवीय कृत्यों को रोकने के लिए आह्वान ने जो आवाज दी है, अति प्रशंसनीय है। देश में सामाजिक एवं आर्थिक समानता आने पर ही इस तरह के प्रकरण नहीं होंगे। और इसके लिए भगतसिंह की राह पर चलना ही पड़ेगा। मैं आह्वान के निरन्तर सफलता की कामना करता हूँ।

–बी.एल.वर्मा
जयपुर

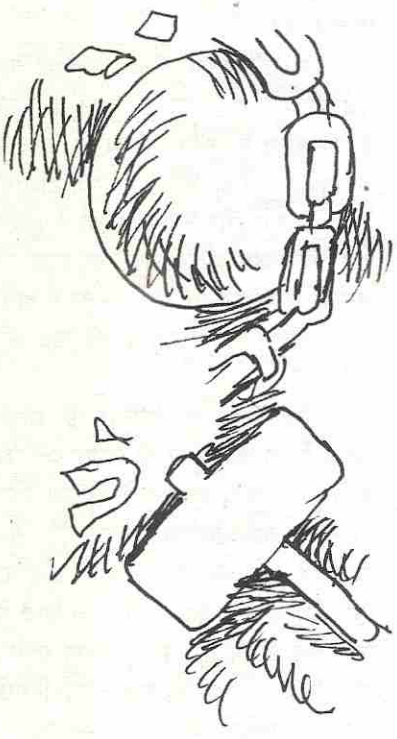

(पृष्ठ 28 का शेष)

प्रतिबद्ध अध्येता हमज़ा अलवी...

कट्टरपंथ, अमेरिका-पाक सैन्य सहयोग, पाकिस्तान की औरतों की स्थिति, साम्राज्यवाद, संस्कृति जैसे विषयों पर काफी काम किया। हमज़ा अलवी से असहमति, और गम्भीर असहमति के बहुतेरे मुद्दे मौजूद हो सकते हैं, लेकिन इस बात को वामपंथी बौद्धिक दायरों में निर्विवाद माना जाता है कि वे "मुक्त चिन्तक" नहीं थे। उनके सुपरिभाषित सामाजिक सरोकार और स्पष्ट प्रतिबद्धताएँ थीं, जिनको लेकर उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया। आज फैशनपरस्त प्रगतिशीलता और अकर्मक विमर्शों के घटाटोप में ऐसे प्रतिबद्ध बुद्धिजीवी अब बहुत कम पाए जाते हैं। खास तौर पर इसलिए, अलवी का निधन वैज्ञानिक सामाजिक चिन्तन के लिए एक अपूरणीय क्षति है, इसमें कोई सन्देह नहीं।